जियो-इंजीनियरिंगः संभावना और परिणाम

के. जयलक्ष्मी

अगर आपको झुलसाती गर्म दोपहरी में तपती सड़क से गुज़रना पड़े तो आप क्या करेंगे? टोपी और धूप के चश्मे का सहारा लेंगे! एक गर्म और तमतमाते ग्रह के बारे में आपका क्या ख्याल है? क्या वहां भी आप यही करेंगे? वाकई, यह मज़ाक नहीं है। वैज्ञानिक अब कुछ जियो-इंजीनियरिंग योजनाओं की तकनीकी एवं आर्थिक संभावनाओं और उनके संभावित दुष्परिणामों पर विचार कर रहे हैं। जिन उपायों पर मंथन किया जा रहा है, उनमें शामिल हैं ऐसे विशालकाय आइने लगाना जो शामियाने के रूप में काम करें, जल वाष्प के ज़रिए बादल उत्पन्न करना, वातावरण में सल्फर उगलने वाले कृत्रिम ज्वालामुखियों का निर्माण करना इत्यादि। ये सारे काम धरती को ठंडा करने में मददगार हैं, लेकिन इनमें कई ज्ञात-अज्ञात खतरे भी निहित हैं। क्या हम इन खतरों को उठा सकते हैं और प्रकृति की स्थापित लय के साथ छेड़खानी को वहन कर सकते हैं? इससे भी महत्त्वपूर्ण, क्या इस तरह यह संकेत नहीं देंगे कि हम जीवाश्म ईंधन को जलाने और पेड़ों को काटने का काम खुशी-खुशी करते रहेंगे?

सवाल यह है कि क्या जियो-इंजीनियरिंग कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन में कमी का बेहतर विकल्प सुझा सकती है? यही वजह है कि जियो-इंजीनियरिंग को अब तक गंभीरता से नहीं लिया गया है और यह जलवायु परिवर्तन की बहस में हाशिए पर ही रही है। लेकिन अब कुछ मजबूरियों के चलते यह भी बहस के केंद्र में आती जा रही है।

इन मजबूरियों में शामिल हैं - पिछले कुछ वर्षों के दौरान कार्बन उत्सर्जन में लगातार बढ़ोतरी, ऊर्जा के लिए कोयले पर निर्भरता बनी रहना, ध्रुवों पर बर्फ की परतों का तेज़ी से पिघलना। बर्फ के पिघलने की गति इस बात का स्पष्ट संकेत है कि हम उस बिंदु तक अनुमान से कहीं पहले पहुंचते जा रहे हैं।

जिन्होंने पहले जियो-इंजीनियरिंग पर कभी विचार तक नहीं किया था, अब वे भी उसकी ओर मुखातिब हो रहे हैं। ऐसे ही एक शख्स हैं नोबेल पुरस्कार विजेता पॉल क्रुटज़न। स्टेनफोर्ड स्थित कार्नेगी इंस्टीट्यूशन फॉर साइंस में पर्यावरण के क्षेत्र में कार्य करने वाले केन कैलडिरा भी जियो-इंजीनियरिंग के समर्थक हैं।

जियो-इंजीनियरिंग का मतलब धरती की भौतिक प्रणाली में इस तरह से बदलाव करना है कि उससे या तो वांछित नतीजे मिल सकें या फिर अवांछित परिणामों को रोका जा सके। इन्हें दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है - एक वे जो आने वाली गर्मी को रोकते हैं और दूसरे वे जो कार्बन डाइऑक्साइड को हटाते हैं। धूप को रोकने के तरीकों को पहली श्रेणी में शामिल किया जाएगा, वहीं महासागर में आयरन ऑक्साइड डालना कार्बन को हटाने वाले तरीकों का उदाहरण है।

आज यह विचार ज़ोर पकड़ता जा रहा है कि जियो-इंजीनियरिंग स्थायी उपाय नहीं है। इसके माध्यम से तब तक के लिए थोड़ा समय हासिल किया जा सकता है, जब तक कि हम ऐसे रास्ते न तलाश लें जिनसे कार्बन उत्सर्जन कम हो सके। अभी कुछ प्रस्तावों पर गहराई से अध्ययन करने और आने वाले सालों में उनके अच्छे-बुरे प्रभावों की पड़ताल करने की ज़रूरत है, ताकि जब प्रौद्योगिकी और नियम-कायदे बढ़ते तापमान को रोकने में विफल हो जाएं तो स्थिति को नियंत्रित करने के लिए कुछ किया जा सके।

कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि ज्वालामुखी के फटने से वातावरण में निकलने वाली लाखों टन सल्फर डाइऑक्साइड गैस या सूर्य के विकिरण को रोकने के लिए निर्मित किए गए बादलों के समान ही वातावरण में सल्फर को घोलकर धरती के तापमान को कम किया जा सकता है। वर्ष 1991

में फिलीपाइन्स के माउंट पिनातुबो ज्वालामुखी के फटने पर पृथ्वी के वायुमंडल में दो करोड़ टन सल्फर डाइऑक्साइड गैस एकत्र हो गई थी। इससे पूरी धरती के तापमान में एक डिग्री फेरनहाइट की कमी हो गई थी। यह स्थिति एक साल तक बनी रही। लेकिन सवाल यह है कि हम वायुमंडल में इतनी सल्फर गैस कैसे डाल सकते हैं? हर साल जेट विमानों के ज़रिए पांच मेगाटन सल्फर ढोने में काफी अधिक पैसा और समय दोनों लगेगा। तोप के जरिए गैस के गोलों को वायुमंडल में पहुंचाना भी इस काल्पनिक योजना का एक हिस्सा है। साथ ही स्पेस एलिवेटर्स भी इसी तरह का एक विचार है।

अधिकांश योजनाओं में मुख्य समस्या उनके अमलीकरण की है। साथ ही सल्फेट सनशेड से हवाओं व बारिश की गति भी परिवर्तित हो सकती है। माना जाता है कि इससे धरती तक सूर्य का प्रकाश कम पहुंचेगा, जिससे वाष्पीकरण भी कम होगा। इस वजह से बारिश में गिरावट आएगी। ऐसा ही वर्ष 1991 में हुआ था। लेकिन क्या यह इतना ही आसान है? कुछ मॉडल बताते हैं कि कॉर्बन और सल्फर ऑक्साइड का बारिश इत्यादि की गति पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।

जहां तक इसके स्वास्थ्य सम्बंधी खतरों का सवाल है, कई स्थानों पर अम्लीय बारिश की घटनाएं हुई हैं और यह कोई नहीं चाहेगा। हालांकि जीवाश्म ईंधन को जलाकर हम पहले से ही वातावरण में 5.5 करोड़ टन सल्फर डाइऑक्साइड छोड़ रहे हैं। कुछ का विचार है कि इसे ही संग्रहित करके उसे वायुमंडल की सतह पर पहुंचा दिया जाना चाहिए। सल्फेट जियो-इंजीनियरिंग के कुछ समर्थकों का कहना है कि यह अल्पकालिक समाधान है और इसकी लागत भी बहुत ज़्यादा नहीं होगी।

अन्य विशुद्ध तकनीकी समाधानों में एक यह भी है कि करोड़ों छोटे-छोटे आइने लगाकर सूर्य के प्रकाश को परावर्तित कर दिया जाए। इन आइनों को पृथ्वी और सूर्य के बीच बिलकुल सही स्थान पर लगाना होगा। फिर सवाल यह उठेगा कि उन्हें वहां पर लगाएंगे कैसे? और तब क्या होगा जब वे कबाड़ हो जाएंगे?

फाइटोप्लैंक्टन वातावरण की कॉर्बन डाईऑक्साइड को अवशोषित कर लेते हैं। इन्हें लौह देकर पोषित किया जा सकता है। तो ऐसे में महासागरों में ऑयरन को पम्प क्यों नहीं किया जा सकता, जैसा कि हाल ही में भारत-जर्मनी के एक अभियान दल ने किया। लेकिन क्या हम यह जानते हैं कि अन्य समुद्री जीवन को लौह किस तरह से प्रभावित करेगा? क्या इससे शैवाल पनपने लगते हैं? संयुक्त राष्ट्र जैव विविधता संधि ने 'ऑयरन सीडिंग' पर रोक लगाने का आह्वान किया है, हालांकि यह बाध्यकारी नहीं है।

एक अन्य विचित्र विचार यह है कि अवशोषक रेज़िन से ऐसे कृत्रिम वृक्ष बनाए जाएं जो हवा में कार्बन डाइऑक्साइड के साथ क्रिया करके ठोस कार्बन डाइऑक्साइड का निर्माण कर सकें। लेकिन यहां समस्या उस ठोस कार्बन डाइऑक्साइड को दफन करने की है। देखा जाए तो विचारों और सुझावों की भरमार है, लेकिन सफलता की गारंटी किसी में नहीं है।

एक बड़ा सवाल किसी भी देश द्वारा किए गए जियो-इंजीनियरिंग के प्रयोगों के अज्ञात प्रभावों का है। और यदि किसी योजना पर निर्णय लेना हो तो यह निर्णय लेगा कौन? इसके राजनीतिक आयामों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। जलवायु परिवर्तन और प्रति व्यक्ति आय बनाम कार्बन उत्सर्जन जैसे विवादों की तरह ही इस मसले पर भी गर्मागर्म बहस होना तय है।

इन सबसे ऊपर, जीवाश्म ईंधन लॉबी के लिए जियो-इंजीनियरिंग उसकी गतिविधियों की निरंतरता का बहाना बन सकती है। हो सकता है भविष्य में उत्सर्जन सम्बंधी नियम-कायदे ही खत्म हो जाएं।

इन तकनीकों की भी एक सीमा है। इन सबसे परे, कार्बन उत्सर्जन में कमी सबसे बड़ा संदेश है और इसे नहीं छोड़ना चाहिए। ***(स्रोत फीचर्स)***